

।।श्री हरिः।।

गीता में ईश्वरवाद

भगवान श्रीकृष्ण की दिव्य वाणी से निःसृत श्रीमद्भगवद्गीता के प्रथम बारह अध्यायों में उनका अह्नवाद सर्वत्र दिखाई देता है किन्तु तेरहवें अध्याय में परमात्म तत्व का निरपेक्ष वर्णन मिलता है। गीता में निरूपित ईश्वर तत्व की अवधारणा में यह स्पष्ट होता है कि भगवान श्रीकृष्ण को भी परमेश्वर का वही स्वरूप मान्य है जो वेदों, उपनिषदों तथा वैदिक दर्शनों में प्रतिपादित है। गीता के तेरहवें अध्याय में श्रीकृष्ण सर्वथा तटस्थ भाव से स्वयं को ईश्वर भाव से पृथक रखते हुए कहते हैं -

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वामृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ (13/12)

अर्थात् जो जानने योग्य है तथा जिसको जानकर मनुष्य अमृतत्व को प्राप्त होता है वह अनादि तत्व परब्रह्म ही है। वह परब्रह्म न तो सत् है और न असत् ही। ज्ञातव्य है कि वेदों तथा उपनिषदों में अमृत को मोक्ष का पर्याय बताया गया है तथा ऋग्वेद का नासदीय सूक्त भी सत् तथा असत् अर्थात् कारणरूप प्रकृति तथा कार्यरूप सृष्टि का ही विवेचन करता है। ईश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए श्रीकृष्ण अगले तीन श्लोकों में कहते हैं कि परब्रह्म सब ओर हाथ पैर वाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है, क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है (13/13)। आकाश जिस प्रकार वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी का कारणरूप होने से उनको व्याप्त करके स्थित है, वैसे ही परमात्मा भी सबका कारणरूप होने से सम्पूर्ण चराचर जगत् को अपने भीतर व्याप्त करके स्थित है। इन्द्रियों से रहित होते हुए भी यह सम्पूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है तथा आसक्ति रहित होने पर भी सबका धारण-पोषण करने वाला और निर्गुण होने पर भी गुणों को भोगने वाला है (13/14)।

श्रीकृष्ण कहते हैं कि वह परब्रह्म ईश्वर सृष्टि के सब भूतों के बाहर-भीतर परिपूर्ण है और चर-अचर भी वही है और सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है अर्थात् जानने में नहीं आता

है। जैसे सूर्य की किरणों में स्थित हुआ जल सूक्ष्म होने से साधारण मनुष्यों के जानने में नहीं आता है वैसे ही सर्वव्यापी परमात्मा भी सूक्ष्म होने से साधारण मनुष्यों के जानने में नहीं आता है। वह परमात्मा सर्वज्ञ, परिपूर्ण और सबका आत्मा होने से अत्यन्त समीप है, साथ ही श्रद्धारहित एवं अज्ञानी पुरुषों के लिए न जानने के कारण बहुत दूर भी है (13/15)। जैसे महाकाश विभागरहित स्थित हुआ प्रत्येक कलश में पृथक-पृथक प्रतीत होता है, वैसे ही परमात्मा सब भूतों में एक रूप से स्थित हुआ भी पृथक-पृथक की भांति प्रतीत होता है। वह जानने योग्य परमात्मा विष्णुरूप से भूतों को धारण करने वाला और रुद्र रूप से संहार करने वाला तथा ब्रह्मारूप से सबको पैदा करने वाला है (13/16)। अगले श्लोक में भगवान् कहते हैं कि वह परब्रह्म ज्योतियों का भी ज्योति एवं माया से अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जानने के योग्य एवं तत्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है और सबके हृदय में विशेष रूप से स्थित है -

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।

ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्टितम् ॥ (13/17)

परस्पर परमात्मा के कुछ गुणों और विशेषताओं की गणना करने वाला बाईसवाँ श्लोक कहता है कि वह परमात्मा जीवों के कर्मों का दृष्टा है। वह जीव की भांति कर्ता नहीं है, वह अनुमन्ता है। जीवों को शुभ कर्म करने में सम्मति देता है, संसार का भरण करने वाला होने के कारण भर्ता है, पालक होने के कारण भोक्ता भी है। ब्रह्मा आदि का भी स्वामी होने के कारण महेश्वर और प्रत्येक जीव की आत्मा में स्थित होने के कारण यह तत्व परमात्मा के नाम से पुकारा जाता है। इक्तीसवें श्लोक में भगवान् कहते हैं कि अनादि और निर्गुण होने से वह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित होने पर भी वास्तव में न तो कुछ करता है और न लिप्त ही होता है। जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिप्त नहीं होता, वैसे ही देह में सर्वत्र स्थित आत्मा निर्गुण होने के कारण देह के गुणों से लिप्त नहीं होता। परमात्मा की मीमांसा वाले इस विषय को 15वें अध्याय में भी उठाया गया है जिसके चौथे श्लोक में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं -

ततः पदं तत्परिमार्गेतव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।

तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ।। (15/4)

अर्थात् हमें उस परम पद की तलाश करनी चाहिए जिसे पाकर हम जीवन-मरण के चक्र से छूट जाएँ। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए हम उस परम पुरुष परमात्मा की शरण में जाएं जिससे यह सनातन सृष्टि-चक्र चल रहा है। भगवान आगे कहते हैं कि उत्तम पुरुष जो परमात्मा है वह प्रकृति तथा जीवात्मा दोनों से भिन्न हैं। यह ईश्वर संज्ञक परम सत्ता लोकत्रय अर्थात् पृथ्वी, द्युलोक तथा अन्तरिक्ष को अपने भीतर समाविष्ट कर उनका भरण-पोषण करती है। यहाँ परमात्मा को तृतीय पुरुष के रूप में वर्णित किया गया है। अठारहवें अध्याय में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं -

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।। (18/61)

अर्थात् वह ईश्वर ही अपनी माया से कर्मानुसार भ्रमण कराता हुआ समस्त प्राणियों के हृदय पटल में विराजमान है। जिस प्रकार किसी कल-कारखाने के प्रधान यंत्र को चलाने से उसकी अन्यान्य मशीनें स्वतः चल पड़ती हैं, इसी प्रकार वह सर्वभूत परमात्मा शक्ति संसार रूपी कारखाने का संचालन कर रही है। अतः उसी परमात्मा की शरण में जाने का निर्देश श्रीकृष्ण देते हैं। गीता के अगले श्लोक में वे कहते हैं -

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।

तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।। (18/62)

अर्थात् हे भारत! तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा। उस परमात्मा की कृपा से ही तू परम शांति को तथा सनातन परमधाम को प्राप्त होगा। लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्ति को त्याग कर एवं शरीर और संसार में अहंता और ममता से रहित होकर केवल एक परमात्मा को ही परम आश्रय, परमगति और सर्वस्व समझना तथा अनन्यभाव से अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूप का चिंतन करते रहना एवं भगवान का भजन, स्मरण

रखते हुए ही उनके आज्ञानुसार कर्तव्य कर्मों का निःस्वार्थ भाव से केवल परमेश्वर के लिए आचरण करना, यह सब प्रकार से परमात्मा के ही शरण होना है ।

गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपनी शरण में आने को न कहकर उस परमात्मा की शरण में आने को कहा है । उसके शरणागत होने से ही जीवात्मा को उत्तम कोटि की शांति प्राप्त हो सकती है । यही गीता का ईश्वरवाद है । उनके अन्य अहम्परक कथन जहाँ मा, मामे, मेरा, मया, यत्, मय, मयि आदि विभक्तियों का प्रयोग हुआ है वह उनकी योगारूढ़ स्थिति में कहा गया वक्तव्य है जैसे कि वे गीता के अंतिम अध्याय के दो श्लोकों में कहते हैं -

मन्मना भव मद्रक्तोमघोजी मा नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिज्ञाने प्रियऽसि मे ॥ (18/65)

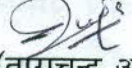
अर्थात् हे अर्जुन । तू मुझमें मानवाला हो, मेरा भक्त बन, मेरा पूजन करने वाला हो और मुझको प्रणाम कर । ऐसा करने से तू मुझे ही प्राप्त होगा, पर मैं तुझसे सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, क्योंकि तू मेरा अत्यन्त प्रिय है । अगले श्लोक में वे कथन देते हुए कहते हैं-

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज ।
अहंत्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ (18/66)


अर्थात् सम्पूर्ण धर्मों को मुझमें त्याग कर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की ही शरण में आ जा । मैं तुझे सम्पूर्ण पापों से मुक्त कर दूंगा, तू शोक मत कर । इतना बड़ा आश्वासन केवल ईश्वर ही दे सकते हैं । हमें उन पर पूर्ण विश्वास करते हुए उनकी शरण में जाना चाहिए । इसी में ही हमारा परम कल्याण है ।

सत्यापन

सत्यापित किया जाता है कि उक्त आलेख मौलिक तथा अप्रकाशित है ।


(ताराचन्द आहूजा)

प्रस्तुति


(ताराचन्द आहूजा)
निदेशक, धार्मिक पुस्तकालय,
हंस विहार मंदिर, 4/114, एस.एफ.एस.,
अग्रवाल फार्म, मानसरोवर, जयपुर-302020
फोन नं: 0141-2395703